❀ श्री ❀



वैराग्य पचीसी





लेखक—

जगद्गुरु श्रीयोगानन्दाचार्य



प्रकाशक—

पुस्तक मन्दिर, मथुरा।

सन् १९५१ ई०]   न्यौछावर ≡)

[यह वैराग्य पचीसी श्रीरामानंदाचार्य जी के शिष्य श्रीयोगानंदजी महाराज की रची हुई है। श्रीरामानंदजी का जन्म सं० १३५६ में हुआ था, इसलिए यह चौदहवीं शताब्दी की रचना है। इसमें कुण्डलियाँ भी विचित्र छंद में हैं। इसको सिद्ध महात्मा पाठ करते आये हैं। इसमें पाठ भेद बहुत हैं। परंतु हमने 'प्रेम प्रकाश प्रेस' जयपुर की छपी हुई प्रति का पाठ ठीक मानकर उसी का पाठ इसमें रक्खा है। इसे पाठ करने से वैराग्य उदय होता है। सिद्ध वाणी है प्रभावशाली है इसे साधूजन विशेष कंठ करते हैं। इसमें सब प्रकार की उत्तम शिक्षा है]

—प्रकाशक

श्रीयोगानन्दाचार्य प्रणीत—

वैराग्य पचीसी

(१)

श्री आचारज जगतगुरु वन्दौं रामानन्द ॥
वन्दौं रामानन्द राम सब जगत बिहारी ।
भाष्यकार भगवान विश्वतारक अवतारी ॥
नश्वर सब संसार सार साँचे सीतावर ।
'योगानन्द' विचारि भजौ पदकञ्ज निरन्तर ॥
रवि ससि जिनकर तेज लखि, भये दीप ज्यों मंद।
श्री आचारज जगतगुरु वन्दौं रामानन्द ॥

(२)

भोगत कोटिन कलप लौं नाहिन नसै मनोज॥
नाहिन नसै मनोज महादुखदायक सोई ।
ज्ञानिन को नित शत्रु देत आतम सुख खोई ॥
लोभ क्रोध लै संग मोह के जाल फँसावत ।
'योगानंद' सो बचइ जाहि गुरुदेव बचावत ॥
तजिये कंचन कामिनी भजिये चरण सरोज ।
भोगत कोटिन कलप लौं नाहिन नसै मनोज ॥

(३)

जैसे गज गजनी निरखि, आय परयो अन्धकूप।
आय परयो अन्धकूप रूप आपन नहिं जानै ।
नाहिं सच्चिदानन्द कन्द रामहिं पहिचानै ॥
देह आतमा मानि खेह निसि वासर खाई ।
'योगानन्द' विचारि देखु दुख की अधिकाई ॥
विज्ञानी अज्ञान परि, भूल्यो आपन रूप ।
जैसे गजगजिनी निरखि, आय परयो अन्धकूप॥

(४)

त्यों मन बीच विचार कर, विषयनमें सुखनाहिं॥
विषयन में सुख नाहिं यथा पाथर में पंकज ।
पानी मथिय हजार बार नहिं पाइय घृत रज ॥
भूसी कूटे अन्न मिलै नहिं ऊसर बोये ।
'योगानंद' नभ गहत वृथा फल बिन दिन खोये ।
कंचन फूल सुगंध नहिं, तेल न बालू माहिं ।
त्यों मन बीच विचारकर, विषयन में सुख नाहिं ॥

(५)

काल व्याल के गाल में, सब समात छल छंद ।
सब समात छल छंद प्रलय की आँधी आये ।
मनुजन की को कहै कोटि विधि इन्द्र नसाये ।।
जब उपजै अज बुद्धि शुद्धि तब मन की होई ।
'योगानन्द' नदी प्रवाह उलटावै सोई ।।
यौवन धन गज अश्व रथ, हेम भवन आनन्द ।
काल व्याल के गाल में, सब समात छल छन्द ।।

(६)

प्रात भये आवत दिवस, ऐसेइ जीवन जात ।
ऐसेइ जीवन जात कमाई करत पाप की ।
पुनिपुनिभोगत नरकविपतिसहित्रिविधतापकी ।।
जुवा भयो मद मत्त फिर हरि नाम न भावै ।
'योगानन्द' गँवाय जनम पाछे पछितावै ।।
सांझ भई पुनि रात पुनि, रात गये पुनि प्रात ।
प्रात भये आवत दिवस, ऐसेइ जीवन जात ।।

(७)

भूँजे ज्ञान विचार सब, पेट जानिये भार ॥
पेट जानिये भार पेट सों सब ही हारे ।
जो जीतै यह पेट जाय सो हरि के द्वारे ॥
भूख भूख चिल्लाय भ्रमत कूकर ज्यों डोलै ।
'योगानन्द' सो साधु कहा भव ग्रंथी खोलै ॥
जरत रहत ज्वाला प्रबल झोंकिय अन्न अहार ।
भूँजै ज्ञान विचार सब, पेट जानिये भार ॥

(८)

मूढ़ वृथा सोचत मरै, जाके नहिं विश्वास ॥
जाके नहिं विश्वास पाप करि पेटहिं भरई ।
चाहत भव निधि तरन करम कूकर सम करई ॥
दृढ़ करि धारै ध्यान तजै तृष्णा अरु आशा ।
'योगानंद' समाधि मध्य सो लखइ प्रकाशा ।
जेते घट विधना गढ़े, तिनहिं भरै अनयास ।
मूढ़ वृथा सोचत मरै, जाके नहिं विश्वास ॥

(९)

सर्प डसै केहरि ग्रसै, ताहि भलो करि मानि ॥
ताहि भलो करि मानि दुष्ट को संग न कीजै ।
खल की मीठी बात जहर ज्यों जानि न पीजै ॥
घात करै मन लिये ज्ञान अरु ध्यान न भावै ।
'योगानन्द' कुसङ्ग साधु को व्याध बनावै ॥
दुर्जन की संगति तजौ, दुष्ट सङ्ग अति हानि ।
सर्प डसै केहरि ग्रसै ताहि भलो करि मानि ॥

(१०)

चंचल वंचक जानिये, मनहिं भूत विकराल ॥
मनहिं भूत विकराल जानि थिर करहु योगसों ।
धारि राम छवि ध्यान खैंचि चित विषय भोगसों ॥
मानै झूठहिं साँच तासु 'मन' नाम कहावै ।
'योगानंद' सोई संत सकल संकल्प मिटावै ॥
कबहुं जाय आकाश में, कबहुं जाय पाताल ।
चंचल वंचक जानिये, मनहिं भूत विकराल ॥

(११)

कोऊ घूँटत धूम मति देह दई झुरसाय ॥
देह दई झुरसाय काम बड़ बाघ न भाग्यो ।
विकल होत तिय निरखि ज्ञानको रंग न लाग्यो ॥
अन्तर अति अभिमान बात बातन महँ गारो ।
'योगानन्द' विचारि भक्ति नव भाँति न धारी ॥
कोऊ झूलत अधोमुख, कोउ करि ऊपर पांय ।
कोऊ घूंटत धूम मति, देह दई झुरसाय ॥

(१२)

करनी कतहुं न देखिये, कथनी आसन मारि ॥
कथनी आसन मारि अगुन उपदेश सुनावैं ।
साकत जैनी सैव अघोरी भ्रम फैलावैं ॥
आचारिन आचार विवस हरिभक्ति भुलाई ।
'योगानन्द' विचारि कहत कलि की कुटिलाई ॥
कलियुग मत बाढ़े बहुत, दीन्हो भक्ति बिसारि ।
करनी कतहुं न देखिये कथनी आसन मारि ॥

(१३)

तुम जनि भूलौ भक्तिरस, रामानन्दी सन्त ॥
रामानन्दी सन्त परम निर्मल पथ पाई ।
पियहु निरन्तर नाम सुधा रघुपति गुन गाई ॥
औरन की लखि भूलनि जनि तुम भूलौ भैया ।
'योगानन्द' विचारि देखु जग भूल भुलैया ॥
यासों प्रगटे जगतगुरु, कीन्ह दम्भकर अन्त ।
तुम जनि भूलौ भक्ति रस, रामानन्दी सन्त ॥

(१४)

मंथन करि पय तक्र तजि, लह नवनीत अहीर ।
लह नवनीत अहीर लहै जिमि मधु मधुमाखी ।
तैसेई गहिये सार सकल ग्रंथन रस चाखी ॥
साधन सौं धन मिलै लगै जब राम नाम मन ।
'योगानन्द' निहारि नयन सच्चिदानन्दघन ॥
हंस सार ग्राही गहत, क्षीर तजति सब नीर ।
मंथन करि पय तक्र तजि लह नवनीत अहीर ॥

(१५)

प्रीति कीजिये राम सों जिमि पतिवरता नारि ॥
जिमि पतिवरता नारि न कछु मनमें अभिलाषै ।
तैसेइ भक्त अनन्य टेक चातक ज्यों राखै ॥
राम रूप रस त्यागि विषय रस स्वाद न चाखै ।
'योगानन्द' सुजान आन को नाम न भाखै ॥
नेकहि में व्रत नासई, आनकि ओर निहारि ।
प्रीति कीजिये रामसों, जिमि पतिवरता नारि ॥

(१६)

विरह ज्वाल जा उर जरै, सोई सीतल होय ॥
सोई सीतल होय पिया बिन कछु नहिं भावै ।
कल न परै दिन रैनि नैन घन ज्यों बरसावै ॥
दशरथ राजकुमार ताहि हँसि कंठ लगावत ।
'योगानन्द' जो विरह अनल में अङ्ग जरावत ॥
नैनद नींद न आवई, रहै रैनि दिन रोय ।
विरह ज्वाल जा उर जरै, सोई सीतल होय ॥

(१७)

गूंगो संभाषण करै, अरथ विचारौ मीत ॥
अरथ विचारौ मीत बात गढ़ि २ जनि छोलौ ।
नाम नाद ह्वै लीन नयन भीतर के खोलौ ॥
रज कन मध्य सुमेर बुन्द में सिन्धु समाई ।
'योगानन्द' चरित्र लखौ करनी करि भाई ॥
अँधरो देखै लोक सब, बहिरो सुनै सुगीत ।
गूंगो संभाषण करै, अरथ विचारौ मीत ॥

(१८)

चल चल ऊरध पंथलखि, दिव्यधाम साकेत ॥
दिव्यधाम साकेत जहां सियरमन विराजत ।
जहँ मारुतसुत आदि पारषद सेवक भ्राजत ॥
प्रलय काल नाहिं नास सदा आनंद अखंडित ।
'योगानन्द' विचारि चलौ ऊरध पथ पंडित ॥
मूढ़ न भटकै नरक में, कर अपने चित चेत ।
चल चल ऊरध पंथ लखि, दिव्यधाम साकेत ॥

(१६)

तौ लौं संत महंत नहिं राम भक्ति रस नाहिं।
राम भक्ति रस नाहिं ज्ञान सागर गर जैसो।
योगी सिद्ध महर्षि मदन भय सब कहँ तैसो॥
जानि देह सों भिन्न आतमा ह्वै रहु न्यारा।
'योगानन्द' विचारि विषय विष विषम विकारा॥
विषय स्वाद की वासना जौ लौं है उर माहिं।
तौ लौं संत महंत नहिं नाम भक्ति रस नाहिं॥

(२०)

रघुपतिध्यान तुरीय सुख ताकीगतिअति झीनि॥
ताकीगति अतिझीनि बिना साधन को जानै।
बिन तुरीय अनुभवे राम छविनहिं उर आनै॥
भक्ति न निर्मल होय मलिनता मिटै न मनकी।
'योगानन्द' विचारि यथा रविपर गति घनकी॥
जागृति स्वप्न सुषुप्ति ये, जीव अवस्था तीनि।
रघुपतिध्यान तुरीयसुख, ताकीगतिअतिझीनि॥

(२१)

रघुनन्दनकी झलकलखि, भूलि जात सबजोग॥
भूलि जात सब जोग लगै जब राम नयनसर।
पुन्य पाप सब जरै बढ़ै उर विरह निरन्तर॥
कोटि वरष तप करै विरह छिनकी बदि तासों।
'योगानन्द' बिन मीत हृदयकी कहिये कासों॥
प्रेम रङ्ग जेहि अङ्ग लगै, ताहि सुहात न भोग।
रघुनन्दनकी झलक लखि, भूलिजातसब जोग॥

(२२)

राममंत्रनिस दिन जपहु, करिनिर्जन बनवास॥
करि निर्जन बनवास जपहु षट लक्ष षड़क्षर।
लागे प्रीति प्रचंड देहिं दरसन सिय रघुवर॥
श्रीगुरु कृपा प्रताप जनम अरु मरन नसाई।
'योगानन्द' करु सफल जात यह जीवनभाई॥
धारि माल तुलसी तिलक, होहु रामके दास।
राममंत्रनिसदिन जपहु, करि निर्जन बनवास॥

(२३)

निरमल गति ताकी सकल, उमगै प्रेमप्रभाव ॥
उमगै प्रेम प्रभाव दुरै न सुगन्ध दुराये ।
नहिं ताके जगग्रोर दिव्य लौ रहइ लगाये ॥
सरिस मानअपमान सरल चित द्वन्द न ताके ।
'योगानन्द' सोइ मुक्त बसें उर रघुवर जाके ॥
जाके हिय रघुवर बसहिं, दुरइ न तासु सुभाव ।
निरमल गति ताकी सकल, उमगैप्रेम प्रभाव ॥

(२४)

आवतपुनि बलि देन रिपु, भाग भाग रे भाग ॥
भाग भाग रे भाग त्याग माया आसक्ती ।
करि संतत सतसङ्ग अङ्ग रङ्गावै भक्ती ॥
फूलै हृदय सरोज भानु निरखै उर माहीं ।
'योगानन्द' हरिमिलहिं गर्भ पुनि झूलै नाहीं ॥
कोटि कलपबीते कलपि, जाग जाग अब जाग ।
आवत पुनि बलि देन रिपु, भाग भाग रे भाग ॥

(२५)

जिनके कोटिन शिष्य मम वर एकादश भ्रात ॥
वर एकादश भ्रात कबीरादिक जग जानैं ।
जिनकर तेज प्रताप निरखि विधिहू भय मानैं ॥
श्रीगुरु आयसु पाय रचौं वैराग पचीसी ।
'योगानंद' जो पढ़इ लहइ गति सुक मुनि कीसी ॥
श्रीश्रीरामानंद प्रभु, जगतगुरू विख्यात ।
जिनके कोटिन शिष्य मम, वर एकादश भ्रात ॥

* इति *

